पोलियो का सफायाः भारतीय सफलता की कहानी

डॉ. टी. जेकब जॉन

एक संक्रामक रोग का दुनिया से सफाया किया जाना सूक्ष्मजीवों पर इंसान के दबदबे का द्योतक है। इसकी दो मिसालें हैंः इंसानों में चेचक का सफाया और गाय-बैलों में रिंडरपेस्ट का सफाया। टीके की मदद से रोकी जा सकने वाली एक और बीमारी है पोलियो, जो हमारा अगला लक्ष्य है। पोलियो को भारतीय चिकित्सा साहित्य में बालग्रह दोष कहा गया है। पहले इसे शिशुओं में होने वाला लकवा कहा जाता था। पोलियो दरअसल पोलियोवायरस किस्म-1, 2 व 3 की वजह से होने वाला रोग है। यदि हम इस बीमारी का उन्मूलन (स्थानीय) और सफाया (वैश्विक) करना चाहते हैं तो कुदरती वायरस को इंसानों में से हटाना होगा।

1988 में विश्व स्वास्थ्य सभा (जिसमें सारे देशों के स्वास्थ्य मंत्री सदस्य होते हैं) ने वर्ष 2000 तक पोलियो का सफाया करने का संकल्प लिया था। इस परियोजना का नेतृत्व चार संस्थाओं ने किया था (विश्व स्वास्थ्य संगठन, युनिसेफ, रोटरी इंटरनेशनल और यूएस सेंटर फॉर डिसीज़ कंट्रोल)। कार्यक्रम का संचालन वैश्विक पोलियो उन्मूलन पहल (जीपीईआई) द्वारा किया गया था। वर्ष 2000 तक दुनिया भर से कुदरती पोलियो वायरस किस्म-2 का सफाया कर दिया गया था। कुदरती वायरस किस्म-1 और किस्म-3 के मामले में पांच देशों को छोड़कर समस्त देश सफल रहे थे। तब लक्ष्य वर्ष 2005 तक बढ़ा दिया गया था मगर एक बार फिर भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और नाइज़ीरिया नाकाम रहे।

सफलता के मार्ग में दो तरह की बाधाएं थींः जैव-चिकित्सकीय (बायोमेडिकल) और सामाजिक-राजनैतिक। जैव-चिकित्सकीय बाधा यह थी कि तिहरे ओरल पोलियो टीके (टी-ओपीवी) की कार्यक्षमता कम थी तथा पोलियो वायरस के संचरण की रफ्तार अधिक थी। सामाजिक-राजनैतिक बाधाओं में एक तो यह थी कि आम टीकाकरण का कवरेज कम था और चिकित्सा तंत्र बच्चों की बड़ी संख्या तक पहुंचने में अक्षम साबित हुआ था। यह माना गया था कि उत्तर प्रदेश व बिहार में जैव-चिकित्सकीय बाधाएं सबसे दुष्कर हैं। इन्हें देखते हुए कई विशेषज्ञों ने भविष्यवाणी की थी कि भारत कभी सफल नहीं होगा। उत्तर प्रदेश व बिहार में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की तादाद सबसे अधिक थी, जिसकी वजह से कुदरती पोलियो वायरस का प्रसार भी सर्वाधिक था। इन प्रदेशों में स्वच्छता व स्वच्छ शौच व्यवस्था सबसे कमज़ोर थी, जिसकी वजह से वायरस बार-बार आंतों में संक्रमण करता था और इसके चलते ओरल पोलियो टीके का असर कम हो जाता था। जनवरी 2011 में भारत ने जो फतह हासिल की वह सचमुच एक जश्न का सबब है, वैश्विक पोलियो उन्मूलन पहल (जीपीईआई) का मनोबल बढ़ाने वाली घटना है। भारत ने साबित कर दिया है कि पोलियो का सफाया संभव है।

पाकिस्तान, अफगानिस्तान और नाइज़ीरिया में सामाजिक-राजनैतिक बाधाएं अत्यंत कठिन हैं क्योंकि हिंसक टकरावों के चलते कई भागों में बच्चों तक पहुंच पाना ही असंभव रहा है। पाकिस्तान में बच्चों का टीकाकरण करते वक्त कई स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की हत्या हुई। भारत में ऐसी कोई सुरक्षा सम्बंधी समस्या पैदा नहीं हुई मगर फिर भी टीकाकरण कई लाख बच्चों तक नहीं पहुंच पा रहा था। ये बच्चे काम की तलाश में प्रवास करते परिवारों या ईंट भट्टों, गन्ने के खेतों में काम करते परिवारों के थे या ऐसे परिवारों के थे जो टीकाकरण के समय बसों या रेलों में सफर कर रहे होते थे। एक बार जब यह समस्या पहचान ली गई तो सुधार के उपाय हुए इससे सफलता में बड़ा योगदान मिला। जिस ढंग से हमने जैव-चिकित्सकीय बाधाओं को पार किया, वह एक अनोखी कहानी है इससे कई सबक सीख सकते हैं।

पोलियो के खिलाफ दो टीके हैं। एक है अक्रिय पोलियो वायरस टीका (आईपीवी, साल्क द्वारा विकसित) और दूसरा है जीवित मगर दुर्बल बनाया गया ओरल पोलियो टीका

(ओपीवी, सेबिन द्वारा विकसित)। भारतीय वैज्ञानिक पोलियो के प्रसार-विज्ञान और टीके की मदद से उसकी रोकथाम के मामले में अग्रणी रहे हैं। खास तौर से आईपीवी और ओपीवी के तुलनात्मक लाभ-हानि का दस्तावेज़ीकरण करने में भारतीय वैज्ञानिकों का अहम योगदान रहा है।

भारत में पोलियो प्रतिदिन 500 बच्चों को लकवाग्रस्त करता था। कुदरती पोलियो वायरस किस्म-1 व किस्म-3 के खिलाफ तिहरे-ओपीवी की प्रभाविता बहुत कम है। प्रभाविता को बढ़ाने के लिए बार-बार टीके की खुराक देना, पल्सनुमा अभियान चलाना और किस्म-1 व किस्म-3 के खिलाफ अलग-अलग इकहरे ओपीवी का उपयोग ज़रूरी था।

दूसरी ओर, आईपीवी मात्र दो खुराक में ही खूब प्रभावी था। इन तथ्यों के मद्देनज़र हमें अपने देश के हिसाब से रणनीति बनाने की ज़रूरत थी मगर निर्णय उन आधारों पर लिए गए जो पश्चिमी देशों के लिए उपयुक्त थे। कई समस्याएं ऐसी होती हैं जिन्हें लेकर भारत में अध्ययन हुए ही नहीं हैं और इनके मामले में नीतिकारों द्वारा पश्चिमी देशों के तरीके अपनाना ठीक कहा जा सकता है मगर पोलियो की बात अलग थी। 1970 व 1980 के दशकों में ही यह दर्शाया जा चुका था कि क्यों पश्चिमी तौर-तरीके हमारे यहां कारगर नहीं होंगे।

पूरे तीन दशकों तक नीतिकारों ने पोलियो के भारतीय विज्ञान को अनदेखा किया जिसके चलते 30 लाख बच्चे अकारण ही लकवाग्रस्त हुए और पोलियो का उन्मूलन पूरे 11 साल पिछड़ गया। अंततः जब जीपीईआई ने भारतीय विचारों को स्वीकार किया तब जाकर हमारी सरकार भी रास्ते पर आई। यदि नीतिगत निर्णयों में वैज्ञानिक प्रमाण न तो चाहे जाते हैं और न उनका उपयोग होता है, तो अनुसंधान की ज़रूरत ही क्या है? चिकित्सा महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अनुसंधान का निम्न स्तर कुछ हद तक मांग व पुरस्कार के अभाव का नतीजा है। यदि आपके द्वारा किए गए अनुंसधान से कहीं कुछ फर्क पड़ता दिखे तो इससे जो संतोष मिलता है वही सबसे बड़ा पुरस्कार होता है। यदि मांग होगी तो आपूर्ति के रास्ते भी बनते जाएंगे।

1994 तक भारत में पोलियो के उच्च प्रकोप को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक राष्ट्रीय पोलियो निगरानी परियोजना (एनपीएसपी) का गठन किया और उसके लिए पैसा भी दिया। यह परियोजना स्वास्थ्य मंत्रालय के विस्तारित टीकाकरण कार्यक्रम के दायरे से बाहर स्थापित की गई थी और इसे मात्र ओपीवी की मदद से पोलियो उन्मूलन की ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी। मगर तिहरे-ओपीवी का उपयोग करके पोलियो उन्मूलन के संदर्भ में उत्तर प्रदेश व बिहार में तीन प्रमुख बाधाएं थीं: आम तौर पर तिहरे-ओपीवी का कमतर कवरेज (टीकाकरण की नाकामी), तिहरे-ओपीवी की कमतर प्रभाविता (टीके की नाकामी), तीसरी बाधा यह थी कि इन प्रदेशों में कुदरती वायरस किस्म-1 व किस्म-3 की संचरण की रफ्तार और तीव्रता इतनी ज़्यादा थी कि शिशुओं को आप टीके की 7-10 खुराक दे पाएं, उससे पहले ही वे पोलियोग्रस्त हो जाते थे। अलबत्ता, अभूतपूर्व ढंग से सारे किरदार साथ-साथ आए और भारत को विजेता बनाने में मदद की।

इनमें स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं और सामुदायिक कार्यकर्ताओं ने विस्तृत 'सूक्ष्म नियोजन' का पालन किया और यह सुनिश्चित किया कि हर बच्चे को पल्स अभियान में टीके की खुराक मिले। इस तरह से कवरेज 99 प्रतिशत तक हो गया, जिसकी जांच सुपरवाइज़रों द्वारा की गई। एनपीएसपी के चिकित्सा अधिकारियों ने हर ऐसे बच्चे का फालो-अप किया जिसे पोलियोजनित लकवा से ग्रस्त घोषित किया गया था। लगातार दो दिनों तक मल के नमूने लेकर उन्हें सम्बंधित प्रयोगशालाओं में भेजा गया। इस काम के लिए एनपीएसपी के तहत विशेष प्रयोगशालाएं स्थापित की गई थीं। इस कार्यक्रम के लिए राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों की एक सलाहकार समिति गठित की गई थी जिसने सारी जानकारी की नियमित समीक्षा करके सरकार को कार्यक्रम के हर पहलू पर परामर्श दिया। राज्य सरकारों ने भी अपनी भूमिका भलीभांति निभाई। केंद्र सरकार ज़रूरी टीके खरीदने के लिए हर वर्ष 1000 करोड़ रुपए खर्च करती रही है। उत्तर प्रदेश व बिहार में पल्स अभियानों की संख्या में 10 प्रतिशत का इज़ाफा किया गया और परिवारों व कार्यकर्ताओं ने भी समुचित सहयोग किया।

दूसरी समस्या थी टीके की असफलता।

भारत में हुए शुरुआती अनुसंधान के परिणामों के आधार पर 2005 में इकहरे ओपीवी किस्म-1 व इकहरे ओपीवी किस्म-3 को लायसेंस दिए गए थे। निर्माताओं ने उत्तर प्रदेश व बिहार में व्यापक उपयोग के लिए ज़रूरी मात्रा में टीके उपलब्ध करवाए। 1999 में किस्म-2 के उन्मूलन से सिद्ध हो गया था कि तिहरे-ओपीवी की प्रभाविता किस्म-2 के खिलाफ काफी बढ़िया थी। मगर तिहरे-ओपीवी में किस्म-2 वाला हिस्सा किस्म-1 व किस्म-3 के काम में बाधा पैदा करता था। ताज़ा अध्ययनों से इकहरे-ओपीवी की उच्च प्रभाविता एक बार ज़ाहिर हुई। इसके अलावा किस्म-1 व किस्म-3 के खिलाफ दोहरे-ओपीवी की प्रभाविता की भी जांच की गई। इस दोहरे टीके की अलग-अलग किस्मों के खिलाफ प्रभाविता तिहरे-ओपीवी की तुलना में कहीं बेहतर थी। इस तरह से सारी बाधाएं एक साथ दूर हुईं और आखरी पोलियो-ग्रस्त बच्ची वह थी जिसे लकवे की शुरुआत 31 जनवरी 2011 के दिन हुई थी। फरवरी 2012 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत को कुदरती पोलियो वायरस से 'नॉन-एंडेमिक' घोषित किया। 'कुदरती पोलियो वायरस मुक्त' की घोषणा 2014 के प्रारंभ में की जाएगी।

मगर यह यात्रा का अंत नहीं है। 1993 में भारतीय वैज्ञानिकों ने वैश्विक पोलियो उन्मूलन की परिभाषा 'कुदरती या टीका-जनित दोनों पोलियो वायरस का शून्य संक्रमण' के रूप में दी थी। दूसरी ओर, जीपीईआई की परिभाषा मात्र 'कुदरती पोलियो वायरस का शून्य संक्रमण' है। इसका मतलब यह हुआ कि ओपीवी (यानी जीवित मगर दुर्बल वायरस से बना टीका) उन्मूलन का सही औज़ार नहीं है। इस बात को जीपीईआई ने अंततः 2006 में स्वीकार किया था। अधिकांश विशेषज्ञों का मत था कि एक बार कुदरती पोलियो वायरस का सफाया हो जाए, तो ओपीवी का उपयोग रोका जा सकता है। 1996 में हमने भविष्यवाणी की थी कि टीकाजनित वायरस का सफाया आईपीवी (यानी निष्क्रिय कर दिए गए वायरस से बने टीके) की मदद से करना होगा ताकि यह प्रक्रिया अपने अंतिम मुकाम तक पहुंचे। इस बात को जीपीईआई ने 2012 में माना।

कुदरती पोलियो वायरस का उन्मूलन करने में भारत की उल्लेखनीय सफलता में यह तथ्य छिप जाता है कि आज भी ओपीवी टीकाजनित वायरस कई बच्चों में पोलियो पैदा कर रहा है। टीकाजनित वायरस से लकवा पैदा करने वाला पोलियो (जिसका प्रकोप फिलहाल प्रति वर्ष 100 है) तब पूरी तरह समाप्त हो जाएगा जब हम ओपीवी का उपयोग बंद कर देंगे। टीकाजनित वायरस प्रकृति में विचरण करते रहेंगे और धीरे-धीरे वे गुण - तंत्रिका पर उनका असर और संक्रमण करने की क्षमता - फिर से हासिल कर लेंगे जो दुर्बल बनाने की प्रक्रिया में गायब हो गए थे। ऐसे दुर्बलता-मुक्त वायरस को फिलहाल 'टीकाजनित पोलियो वायरस' कहा जाता है। ये वायरस आज भी भारत समेत कई देशों में यदा-कदा पोलियो फैलाते हैं। हमारे यहां 2013 में 4 ऐसे मामले सामने आए हैं और ये सारे किस्म-2 के वायरस के कारण हुए हैं। यह सामान्य अनुभव रहा है - टीकाजनित पोलियो वायरस के 85 प्रतिशत मामले किस्म-2 के होते हैं।

लिहाज़ा 2013 में जीपीईआई की नई नीति सामने आई हैः कि ओपीवी इस्तेमाल करने वाले सारे देशों में 2015 में आईपीवी का उपयोग शुरू किया जाए और 2016 में तिहरे-ओपीवी की जगह दोहरे-ओपीवी का उपयोग शुरू कर दिया जाए। यह नाटक के अंतिम अंक का पहला हिस्सा है - विश्व भर में एक साथ तिहरे-ओपीवी की जगह दोहरे-ओपीवी का इस्तेमाल लागू करना। पाकिस्तान, अफगानिस्तान और नाइज़ीरिया भी अंतिम अंक में भाग लेंगे और उम्मीद की जानी चाहिए कि आईपीवी कुदरती वायरस के इन अंतिम गढ़ों में से कुदरती वायरस किस्म-1 और किस्म-2 का सफाया करने के काम को रफ्तार देगा। भारत को भी विश्व स्वास्थ्य संगठन की नीति का पालन करना होगा। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद की एक विशेषज्ञ समिति ने हाल ही में यह सिफारिश की है कि वर्ष 2015 में आईपीवी लागू कर दिया जाए। यह कार्रवाई तिहरे ओपीवी को हटाकर दोहरे-ओपीवी को लागू करने से पहले की जाएगी। वैसे दुनिया भर के विशेषज्ञ भारत को उसकी सफलता पर बधाई दे रहे हैं और उसे इस अंतिम अंक की

ओर धकेल रहे हैं मगर सच्चाई तो यह है कि भारत को विकासशील देशों का नेतृत्व करना चाहिए था क्योंकि हमारे पास वे सारे प्रमाण और विचार हैं जिनकी मदद से एक ऐसे विश्व की कल्पना की जा सकती है जहां कोई बच्चा पोलियो से ग्रस्त नहीं होगा - न कुदरती वायरस से और न टीकाजनित वायरस से।

अंतिम अंक का दूसरा हिस्सा होगा कि जब पूरी दुनिया कुदरती वायरस किस्म-1 व किस्म-2 के संक्रमण से मुक्त तीन साल गुज़ार ले, तब दोहरे-ओपीवी टीके का उपयोग बंद करना। ***(स्रोत फीचर्स)***